शब्द-ब्रह्म
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2320 – 0871
17 सितंबर 2015
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

प्रसाद के नाट्य साहित्य में नारी

चंद्रकांत तिवारी (यूजीसी नेट)
एम.बी.जी.पी.जी. कॉलेज, हल्द्वानी,
कुमाऊँ विश्वविद्यालय,
नैनीताल, भारत

शोध संक्षेप

प्रसाद ने कुल 11 नाटकों की रचना की। इन नाटकों में प्रसाद जी की नाट्य-कला क्रमशः विकसित होती रही है। नाटककार जयशंकर प्रसाद की कला ने नारी चरित्र का अभूतपूर्व चित्रण किया है। वे उनसे पूर्ण सामंजस्य स्थापित करते हुए नारी के विभिन्न चित्र देने में सफल हुए हैं। उनके पुरुष पात्रों में नारी पात्रों की अपेक्षा रमणीयता, सौंदर्य, त्याग, प्रेरणा, माया, ममता आदि भाव उच्च कोटि के नहीं हैं। मनोवैज्ञानिक आधार पर स्त्री पात्रों की पुष्टि करने में उनके आदर्श को ही सामने रखने की भावना अधिक काम करती रही है। उनका स्त्री-समाज दया, सेवा, श्रद्धा, तपस्या, आदि मधुरता आदि गुणों का निधि एवं भण्डार है। इन्हीं गुणों का आधार लेकर पुरुष वर्ग कर्मण्य बनता है। उसमें जागरूकता आती है। वह न्याय मार्ग का अवलंब ग्रहण करता है और सत्पथ पर चलता हुआ अपने उद्देश्य की सिद्धि कर लेता है। प्रस्तुत शोध पत्र में इसी पर विचार किया गया है।

प्रस्तावना

"प्रसाद की स्त्री-विषयक यह भावना भारतीय ग्रंथों के अध्ययन का परिणाम है। विभिन्न वैदिक, वैष्णव और शैव साहित्य के अध्ययन से उनकी एक निश्चित धारणा बन चुकी थी। उसी के आधार पर भारतीय संस्कृति के प्रति उनका एक अलग दृष्टिकोण हो गया था। वैदिक ग्रंथों में नारी पुरुष को उन्नतिशील बनाने में चेष्टारत है। वह ऋग्वेद में वंदनीय मानी गई है।"1

लौकिक साहित्य में नाटककार प्रसाद कालिदास, भवभूति, वाल्मीकि, व्यास आदि से प्रभावित हैं। शैव और बौद्ध दर्शन का भी पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। प्रसाद के संपूर्ण साहित्य में उक्त सभी ग्रंथों का प्रभाव नियतिवाद, अभेदवाद, आनंदवाद, समरसतावाद, क्षणिकवाद, करूणावाद आदि के रूप में प्रकट हुआ है। भारतीय परंपरा में जहाँ करूणा, त्याग, आदर्श आदि की भावना का प्रचार हुआ है वहीं पाश्चात्य-परंपरा ने नारी की स्वच्छंदता और स्वतंत्रता का समर्थन भी किया हैं। प्राचीन ग्रंथों के अतिरिक्त समसामयिक विचार द्वारा भी प्रसाद की नारी-विषयक भावना का स्थिरीकरण हुआ है। इस युग में मार्क्सवाद, बौद्धिक मानवतावाद आदि का प्रचार हुआ था। इससे मानव-महत्व की समान प्रतिष्ठा की गई। स्त्री-पुरुष को समान अधिकार मिला। स्त्रियाँ केवल भावुक नहीं रह गई उनकी बौद्धिक चेतना का भी विकास हुआ। मानवतावादी विचारधारा ने उनकी साहित्यिक मान्यता को प्रभावित किया इससे नारी का चित्रण तदनुसार किया गया। सुधारवादी संस्थाओं में से आर्य-समाज का विशेष प्रभाव पड़ा हैं। इस संस्था ने बाल-विवाह, विधवा-विवाह आदि नारी जीवन से संबंधित अनेक बातों का समाधान किया। अतः नारी संबंधी प्रसाद भावना आदर्श एवं सुधारवादी प्रवृत्ति से प्रभावित है। स्त्री पात्रों

के निर्माण में प्रसाद जी विशेष कुशल हैं। इन चरित्रों के गठन में वे पुरुष-चरित्रों की अपेक्षा अधिक सफल हुए हैं। प्रसाद जी के इन पात्राओं में हृदय की प्रधानता है। स्त्रियाँ करूणा की मूर्ति हैं और पुरुष प्रकृति का कठोर-कर्मठ अंग है। स्त्रियों के राज्य की सीमा विस्तृत और पुरुष का संकुचित है। उनके द्वारा चित्रित श्रेष्ठ स्त्रियों में भावुकता त्याग, सेवा, मर्यादा का आधिक्य है। प्रणय-गोपन की प्रवृत्ति है, आत्म-संयम है और है अपना सब कुछ बलिदान कर देने की क्षमता। वे प्रेमी को ग्रहण करना जानती हैं और उनके स्वार्थ और निम्न भावनाओं का आभास पाकर उनको छोड़ देने की शक्ति भी रखती हैं। इस प्रकार उन्होंने महिमामयी, त्यागशीला आर्य ललनाओं का चित्र ही अधिक अंकित किया है। उग्र स्वभाव वाली क्रूर, छलनामयी नारी का चित्र अपेक्षाकृत कम है। उनमें अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के पात्र हैं। प्रसाद के नारी पात्र पुरुषों के द्वारा ही क्षुब्ध होकर प्रतिक्रिया को जन्म देते हैं। इस प्रकार वह अपने अधिकारों के प्रति सजग और सचेष्ठ बन जाती हैं। उनकी भावना में परिवर्तन होता है। सामाजिक व्यवस्था के अधिकार रहित, दयनीय और भविष्यहीन नारी स्थिति को पुरुष की क्रूरता, अन्याय और अत्याचार में सिसकते देखकर प्रसाद ने युग परंपरा से प्राप्त अनेक पुरातन मान्यताओं को तोड़कर स्त्रियों को उनकी स्थिति से परिचित कराया। पुरुष के लिए नारी सब कुछ बलिदान कर देती है, लेकिन उसके ”बलिदान का भी कोई मूल्य नहीं कितनी असहाय दशा है। अपने निर्बल और अवलंब खोजने वाले हाथों से यह पुरुषों के चरणों को पकड़ती है और वह सदैव ही इनको तिरस्कार, घृणा और दुर्दशा की भिक्षा से उपकृत करता है। तब भी यह बावली मानती हैं?“2

प्रसाद के नाटकों की विशेषता

प्रसाद के नाटकों की विशेषता इस बात में है कि उनमें व्यक्ति का विद्रोह अंततः समाज या वर्ग के विद्रोह का ही अंग बन जाता है। उनके नाटकों में सबसे अधिक विद्रोही उनके नारी-पात्र हैं और इन नारी-पात्रों के विद्रोह के पीछे वैयक्तिक मनोवैज्ञानिक कारण कम और सामाजिक वस्तुगत कारण अधिक हैं। 'जनमेजय का नागयज्ञ' की यादवी सरमा, 'अजातशत्रु' की बर्बर लिच्छिवि रक्त छलना, दरिद्र-कन्या के रूप में तिरस्कृता मागंधी और कोसल में कंकड़ी से भी गई-बीती दासी पुत्री राजमहिषी शक्तिमती सब अपने में वैयक्तिक आक्रोश से सुलगती दीखती हैं। छलना की सारी आकांक्षाएँ इस आत्म-प्रतारणा से बाधित हैं कि वह छोटी है। ”बिंबसार के इस दार्शनिक विचार से कि मानव नीचे से व्यर्थ ही ऊपर चढ़ना चाहता है। वह तिलमिला उठती है और नीचे के लोग वहीं रहें। वे मानों कुछ अधिक नहीं रखते ? ऊपर वालों का यह क्या अन्याय नहीं है?”3

मागंधी बुद्ध द्वारा रूप के तिरस्कार से प्रताड़ित होकर जीवन के आँधी-पानी में ही नहीं पड़ जाती वरन् उदयन की रानी बन जाने पर भी रूप का गौरव दरिद्र-कन्या कहलाने के दैन्य से छटपटाकर हुँकार उठती है इसका भी प्रतिशोध लूँगी अब से यही मेरा व्रत हुआ। उदयन राजा है तो मैं भी अपने हृदय की रानी हूँ और बुद्ध से भी वह मन ही मन यह कहना नहीं भूली ”गौतम, यह तुम्हारी तितिक्षा तुम्हें कहाँ ले जाएगी? यह तुमने कभी नहीं विचार किया। सुंदरी स्त्रियाँ भी संसार में कुछ अपना अस्तित्व रखती हैं। अच्छा, देखें तो कौन खड़ा रहता है?”5 शक्तिमती का यह विद्रोह पुरुष-जाति के विरूद्ध वाक्युद्ध के रूप में दिखाई देता हैं। ”यदि पुरुष इन कामों को कर

सकता है तो स्त्रियाँ क्यों न करें ? क्या उन्हें अंतः करण नहीं है ? क्या उनका जन्मसिद्ध कोई अधिकार नहीं हैं ? क्या स्त्रियों का सब कुछ पुरुषों की कृपा से मिली भिक्षा मात्र हैं?"6

किंतु प्रसाद के नाटकों में ये नारियाँ इस आक्रोश, चुनौती और विद्रोह के बावजूद व्यावहारिक जीवन में ध्रुवस्वामिनी को छोड़कर सर्वत्र पराजित दिखाई देती हैं। नारी की शक्ति को उजागर करती शक्तिमती कहती है- "फिर बार-बार यह अवहेलना कैसी यह बहाना कैसा ? हमारी असमर्थता सूचित करा कर हमें और भी निर्मूल आशंकाओं में छोड़ देने की कुटिलता क्यों है ? क्या हम पुरुष के समान नहीं हो सकती ? क्या चेष्टा करके हमारी स्वतंत्रता नहीं पददलित की गयी है ?"7 कहीं विद्रोह का आधार ही खोखला हो जाता है। कहीं नैतिक दबाबों में आकर उसका शमन हो जाता है और कहीं वह अपनी असमर्थता स्वीकार कर लेता है। ऐसा प्रायः प्रसाद की स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति के कारण हुआ है। जिसके अनुसार नारी सब से हारी है और विजया की तरह भरा हुआ यौवन और प्रेमी हृदय समस्त विलास के उपकरणों से शक्ति का पूरा प्रदर्शन कर भी अपनी असफलता पर चौंक उठती है, तो मैं क्या हारी ? यह बात दूसरी है कि जीवन भर असफल होती आई मागंधी उदयन की राजमहिषी, शैलेन्द्र की प्रेयसी और काशी की वार विलासिनी के रूप में भटकने के बाद गौतम बुद्ध की शरण में आकर कहती है कि "प्रभु! मैं नारी हूँ जीवन-भर असफल होती आयी हूँ। मुझे उस विचार के सुख से न वंचित कीजिए। नाथ जन्म-भर की पराजय में भी आज मेरी विजय हुई।"8 क्या सचमुच उसकी विजय थी या विवशता ? इसे न शक्ति की विजय कहा जा सकता है और न उसके सतृष्ण प्रेम की विवशता। "इस अंतिम परिणति में उस नारी के विद्रोह की कार्य शक्ति कहाँ है जो स्वर्ण पिंजर में बद्व श्यामा की तरह मुक्त नील गगन में अपने छोटे-छोटे पंख फैलाकर उड़ने के लिए राजमहल की परतंत्रता से बाहर आई है वस्तुतः 'ध्रुवस्वामिनी' ऐसी एकमात्र नाट्यकृति है जिसमें व्यष्टि समष्टि रूप हो जाती है और प्रसाद की दृष्टि में तर्कसंगत व्यावहारिकता दिखाई देती है। 'जनमेजय का नागयज्ञ' की शीला के शब्दों में, "जो मनुष्य अपने को मनुष्यों से कुछ अधिक समझते हैं उनसे में बहुत डरती हूँ।"9 'अजातशत्रु' में वासवी बच्चे बच्चों से खेलें- बंधु वर्ग सम्मानित हो, सेवक सुखी प्रणत अनुचरे का आदर्श लेकर गृहस्थ की मानवता का दर्शन कराती हैं। प्रसाद के नाटकों में पुरुष पात्रों की अपेक्षा नारी-पात्रों के माध्यम से आक्रोश अधिक व्यक्त हुआ है। इसका एक कारण यह है कि वे सबसे अधिक पीड़ित और प्रताड़ित दिखाई देती हैं। इसके अतिरिक्त प्रसाद ने, "उन्हें मानवता की भावना से सबसे अधिक प्रेरित दिखाया है क्योंकि नारी की कातिल दृष्टि में जो बल, जो कर्त्तव्य शक्ति है। वह मानव शक्ति का संचालन करने वाली हैं।"10

'अजातशत्रु' में प्रसाद ने इस आदर्श को वासवी और पद्मावती जैसे पात्रों से व्यक्त कराने का यत्न किया है। वासवी पारिवारिक वात्सल्य का मल्लिका दांपत्य कर्त्तव्य-भावना का और वाजिरा दांपत्य प्रेम का आदर्श प्रस्तुत करती हैं। इसके विपरीत मागंधी, छलना और शक्तिमती उस नारी का प्रतिनिधित्व करती हैं जो पश्चिमी सभ्यता और विलास भावना का अंधानुकरण करने वाली नारी के प्रति चरित्र युगीन प्रभाव और प्रतिक्रिया से निर्मित हुए हैं और यहाँ भी प्रसाद ने जो

प्रतिक्रियाएँ मल्लिका या वासवी के रूप में व्यक्त की हैं, वे शुद्ध भारतीय हैं। वस्तुतः प्रसाद की दृष्टि व्यापक रही है। "उन्होंने नारी के चित्रण में वैषम्य को विशेष महत्व दिया। दूसरी ओर स्त्री-पुरुष के संबंधों को भी सम-विषम दोनों दृष्टियों से देखा है।"11

कथावस्तु के संयोजन में निहित इस प्रकार के दोषों ने चरित्र-योजना पर भी प्रभाव डाला है। पद्मावती-मागंधी, छलना-वासवी, शक्तिमती-मल्लिका जैसे सत्-असत् उत्तम-अधम पात्रों के युग्म प्रस्तुत कर उनको श्रेणीगत चरित्रों में बाँधना सरल है, किंतु इन पात्रों को व्यक्तित्व की समग्रता में मानवीय दृष्टिकोण की सहज उदारता से देख सकना अपेक्षाकृत कठिन कार्य है। उदाहरण के लिए इस नाटक की सबसे प्रभावशाली पात्र मल्लिका एक साथ ही देवी और पत्थर है उसे पत्थर की देवी बनाते हुए प्रसाद ने उसे निर्जीव बनाकर नाटक पर थोप दिया है। उसकी व्यथा को वे अनुभव नहीं कर पाये-अन्यथा उसे देवी बनाने में उसकी व्यथा बाधक ही होती, एक स्थापना ऐसी भी है। मल्लिका के चरित्र-चित्रण से एक और दोष यह भी आया है कि उससे गौतम का चरित्र दब गया है। इस पर भी वह शरीर ही नारी के रूप में महात्मा बुद्ध की छाया ही दीख पड़ती है। उसकी तुलना में मागंधी का चरित्र अवश्य विकासशील है, पर वह केवल रेखाओं में ही व्यंजित हो पाया है संपूर्णता का उसमें अभाव है। मल्लिका केवल आदर्श नारी का भावात्मक प्रतीक बनकर रह गई है जिसे प्रसाद ने कोमलता ओर करूणा का विश्लेषण और अंतर्जगत का ऐसा उच्चतम विकास माना है जिसके बल पर समस्त सदाचार ठहरे हुए हैं। वह अपने पति के हत्यारों विरूद्धक और प्रसेजित् के प्रति जिस सद्भाव का व्यवहार करती है, वह गांधी-युग में अविश्वसनीय चाहे न लगे, किंतु भावात्मक द्वंद के अभाव में वह अमानवीय अवश्य लगता है।

निस्संदेह प्रसाद हिंदी-नाट्य साहित्य में पात्रों को स्वतंत्र व्यक्तित्व प्रदान करने में अग्रगण्य हैं। उन्होंने कथानक के वैशिष्ट्य पर ध्यान न देकर चरित्रों की बहुरूपता तथा सजीवता को प्रतिबिंबित करना ही अपना लक्ष्य बनाया। उनके नाटकों को चरित्र-धर्मी कहा जा सकता है। उनके नाटकों की मुख्य विशेषता चरित्र सौष्ठव एवं बाहुल्य को प्रदर्शित करना है। जिस प्रकार आंग्ल साहित्य के सर्वश्रेष्ठ नाटककार शेक्सपियर के नाटक चरित्र-प्रधान एवं मनोविश्लेषण-प्रधान हैं उसी प्रकार प्रसाद के नाटक भी सफल हैं। प्रसाद को व्यक्ति के चित्रों के अंकन करने में अधिक सफलता मिली है। उन्होंने विशाल चित्र पट पर वैविध्यपूर्ण चरित्रों का अंकन कर उनमें नारी जाति के सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन को निरूपित किया हैं। प्रसाद के अधिकांश स्त्री और पुरुष पात्र, देश-प्रेम, संस्कृति-प्रेम, सौंदर्य प्रेम, प्रकृति-प्रेम आदि की भावनाओं से अनुप्राणित हैं। नारी पात्रों की सूक्ष्मतम भंगिमाओं को व्यक्त करने में उनके नाटक सक्षम हैं।

'राज्यश्री' नाटक में प्रमुख पात्र राज्यश्री है। उस अभूतपूर्व सौंदर्यमयी रूप-शिखा पर सभी पंतग गिरकर भस्मीभूत होते हैं परंतु राज्यश्री तो केवल एक के लिए ही अपने को समर्पित कर सकी है अथवा कर सकती है। राज्य श्री धर्म, करूणा की उज्जवल मूर्ति है, जिसका हृदय अति विराट है और जिसमें भारतीय संस्कृति का शील अपनी पराकाष्ठा पर पंहुचा हुआ है। वह अपने पति ग्रहवर्मा को चिंतित मुद्रा में देखकर उन्हें सभी प्रकार से सांत्वना देकर चिंता मुक्त करने की चेष्टा करती है। वह भयंकर विपत्तियों और

संकटों में भी साहसच्युत नहीं होती है। वह जीवनदान कर सकती है, देवगुप्त से कहती है- "मैं तुम्हारा वध न कर सकी, तो क्या अपना प्राण भी नहीं दे सकती?"12 इस प्रकार यह स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है कि राज्यश्री का चरित्र शौर्य, प्रेम तथा त्याग से परिपूर्ण है।

आचार्य पं. नंददुलारे बाजपेयी का मत है। "प्रसाद जी नाट्य-कला संबंधी स्वतंत्र आकार लेकर चले हैं और उसकी परीक्षा के लिए अनुकूल रंगमंच का होना आवश्यक है। बिना ऐसी परीक्षा का अवसर दिए यह कहना कि प्रसाद जी की भाषा जटिल है, नाटक नाट्यपयोगी नहीं, प्राथमिक उत्तरदायित्व से मुँह मोड़ना है। प्रसाद जी के ऐतिहासिक मनोवैज्ञानिक और रोमांटिक नाटकों की अपनी सुस्पष्ट विशेषताएं हैं। जिनकी अवहेलना नहीं की जा सकती।"13 विशाख नाटक में प्रसाद ने एक आदर्श नारी पात्र की रचना की है। इसमें एक युवक और युवती की प्रेम कहानी को दर्शाया गया है, जिसका उत्स प्रथम दर्शन में ही निहित है। उस प्रेम का आवेग अत्यंत तीव्र है। उसमें रोमांटिक लव अथवा स्वच्छंद प्रेम के लक्षण निहित हैं। उस प्रेम कहानी में प्रेमी है विशाख और प्रेमिका है चन्द्रलेखा। उसमें रूप-यौवन, भावुकता आदि सभी तत्व विद्यमान हैं और चारित्रिक पवित्रता में वह स्वच्छंदतावादी आदर्श नारी पात्रों का प्रतिनिधित्व करती है। उसके मानस में प्रेम का विकास और विपत्ति का परिहास साथ ही साथ दोनों उबल पड़े, हृदय में विपत्ति की दारूण ज्वाला जल रही थी, उसी में प्रणय-सुधाकर ने शीतलता की वर्षा की मरूभूमि लहलहा उठी। परंतु विपत्तियों के कठोर थपेड़ों को सहते हुए भी उसने प्रेम के पवित्रमय एवं उच्चतम धरातल से अपने को स्खलित नहीं होने दिया। उसके हृदय-मंदिर का देवता एक मात्र विशाख ही हो सका। महाराज नरदेव के प्रणय निवेदन को उसने कंदुक अर्थात गेंद की भांति ठुकरा दिया।

'जनमेजय का नागयज्ञ' में यादवी सरमा निर्भीक तेजस्विनी तथा वीरता पर मुग्ध होने वाली महिला है। जाति-प्रेम की भावना भी उसमें प्रबल रूप में विद्यमान है। उसने वासुकि की वीरता पर मुग्ध होकर आत्म-समर्पण कर दिया। परंतु मनसा द्वारा किए गए। अपने जातीय अपमान को भी वह सहन नहीं कर सकती। वासुकि के प्रति प्रेम तथा जातीय अपमान के विरोधी खिंचाव के कारण उसके मन में द्वंद्व का भाव निहित है। "अंततः दोनों जातियों-आर्य जाति तथा नागजाति के लिए कल्याणकारी श्रृंखला बनकर मणिमाला तथा जनमेजय का पाणिग्रहण कराती है। उसे सच्ची प्रेमिका के रूप में देखा जा सकता है। वह वासुकि को ग्रहण करने में लेश मात्र भी विचलित नहीं होती तथा अंत तक एक आदर्श प्रेमिका की भाँति प्रेम-निर्वाह करती है। मणिमाला भी सरल बाला है। भावनाओं एवं कल्पनाओं से अभिषिक्त उसका हृदय अति उदार है। वह जनमेजय की प्रिया बनकर, उसके जीवन शांति, करूणा तथा सहृदयता के भाव को भरने में सफल सिद्ध हो सकी हैं।"14

प्रसाद स्वतंत्र विचारक थे। उनकी अपनी दृष्टि थी। अंधानुकरण उनकी प्रवृत्ति के विपरीत था। वे सभी बातों को सामयिक परिप्रेक्ष्य के आधार पर अपने अनुभवों से विचार करते थे। 'अजातशत्रु' नाटक में मगध का सम्राट अजातशत्रु कौशल के साथ युद्ध करते समय बंदी बना लिया जाता है। वहीं पर बंदीगृह से लगे राज महल में वह राजकुमारी बाजिरा के सम्पर्क में आता है, दोनों एक-दूसरे से प्रभावित होते हैं। राजकुमारी बाजिरा अजातशत्रु को बंदी बना देखकर खेद

प्रकट करते हुए कहती है- "राजमंदिर बंदीगृह में बदल गये हैं। कभी सौहार्द्र से जिसका आतिथ्य कर सकते थे उसे बंदी बनाकर रखा है सुंदर राजकुमार कितनी सरलता और निर्भीकता इस विशाल भाल पर अंकित है। अहा! जीवन धन्य हो गया है। एक नवीन संसार इसमें बस गया है। यही प्रेम है। तो अवश्य स्पृहणीय है, जीवन की सार्थकता है। कितनी सहानुभूति, कितनी कोमलता का आनंद मिलने लगा है।"15

किंतु प्रणय की इन कोमल भावनाओं को कौशल कुमारी बाजिरा वहीं दबा देती है, कहीं शत्रु कन्या के रूप में अपना परिचय देने पर अजात ने मुँह फेर लिया तो क्या होगा ? उधर बंदी अजातशत्रु भी बिना किसी परिचय के बाजिरा के प्रति अज्ञात आकर्षण का अनुभव करता है और दोनों एक-दूसरे को हृदय से आत्मसमर्पण कर देते हैं। प्रसाद युगीन विचारों से प्रभावित थे। उनके नाटकों में प्राचीन इतिहास की आधार भूमि पर वर्तमान युग के प्रश्नों का समाधान ढूँढने का कार्य किया गया है। प्रसाद की नारी पात्राएं उदात्त भावों से पूर्ण और अपने अधिकारों के प्रति सजग है। वे सांस्कृतिक गौरव की रक्षा करके आत्म स्वतंत्रता को महत्व देने वाली हैं। कोमल पर अवसर के अनुकूल कठोर भी हैं। प्रसाद की मान्यता है कि अपनी रक्षा के लिए समाज के समक्ष किया गया, विद्रोह भी नीति-विरोधी नहीं माना जा सकता है। अतः प्रसाद की नारी समाज पर बोझ न होकर स्वतंत्र व्यक्तित्व लेकर हमारे समक्ष आती है। वस्तुतः वह प्रचलित संकीर्ण परंपराओं में न बंधकर नए रूप में समक्ष आती है। स्कंदगुप्त की विजया युवराज स्कंदगुप्त के राजकीय प्रभाव पर आसक्त है। उसके प्रेम में संयम धैर्य के स्थान पर उन्माद और प्रतिहिंसा है। युवराज की भावनाओं को पूरी तरह समझ न पा सकने के कारण ही वह शीघ्रता में भटार्क का वरण करती है और बाद में अपना दोष देवसेना के सर डालकर उसके प्राणों की प्यासी बन जाती है। देवसेना को शमशान तक ले जाती है तो दूसरी ओर स्कंदगुप्त के सौतेले भाई पुरगुप्त की माता अनंत देवी को प्रसन्न करना चाहती है। शर्वनाग के कहने पर वह देश सेवा और जन कल्याण की ओर मुड़ती है किंतु न स्वार्थ में स्थिर रह पाती है न परमार्थ में मुद्गल के मुख से यह सुनकर कि अवंती में यह बात सबको विदित थी कि विजया महादेवी बनेगी, एक बार फिर उसके मन में ऐश्वर्य का लोभ जागता है और वह अपना रत्न-गृह सम्राट को देकर स्वार्थ और परमार्थ दोनों को प्राप्त करना चाहती है। स्कंदगुप्त से स्वयं प्रणय याचना करती हुई विजया कहती है-"प्रियतम यह भरा हुआ यौवन और प्रेमी हृदय विलास के उपकरणों के साथ प्रस्तुत है।"16 किंतु स्कंदगुप्त घृणा से पैर छुड़ाकर कह देता है- कह देता है- "विजया। पिशाची। हट जा, नहीं जानती मैंने आजीवन कौमार व्रत की प्रतिज्ञा की है।"17और विजया 'तो क्या मैं फिर हारी' कहकर भटार्क से भी अपमानित होकर छुरी निकालकर आत्महत्या कर लेती है। घृणित शव का अग्नि संस्कार न करके जब भटार्क उसे जमीन में गाड़ने की सोचता है तो भयानक शब्द के साथ रत्नग्रह प्रकट होता है जिससे देश की रक्षा के लिए सेना संकलन करने में सहायता मिलती है। इन नाटकों में अनुरागिनी प्रेयसियों के अनुरागोदय के भी दो प्रकार परिलक्षित होते हैं- एक प्रथम दर्शन में आकर्षण और दूसरा बाल-सहचर्य एवं गुण दर्शन से प्रेम का आरंभ। कहीं यह प्रेम सफल हो जाता है तो कहीं असफल चन्द्रगुप्त-कार्नेलिया, अजातशत्रु-बाजिरा, विशाख-चन्द्रलेखा, सिंहरण और

अलका, चन्द्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी का प्रेम प्रथम दर्शन से उत्पन्न प्रेम है एवं कुछ कठिनाइयों को पार कर अन्त में परिणय के रूप में परिणित हो जाता है। स्कंदगुप्त विजया और मल्लिका और विरूदक में यह प्रेम सफल नहीं हो पाता। बाल साहचर्य एवं गुणदर्शन से आरंभ होने वाले प्रेम में स्कन्दगुप्त-देवसेना, चन्द्रगुप्त और कल्याणी का प्रेम है। भले ही संसार परिणय को ही प्रेम की सफलता मानकर इस प्रेम को असफल कह दे किंतु यह सत्य हृदय के बहुत निकट प्रतीत होता है। इस त्यागपूर्ण सहिष्णु प्रेम की भावभूति सफलता और असफलता से परे की वस्तु है। स्कन्दगुप्त की देवसेना हँसते हुए भी रोती है और रोते हुए भी हँसती है। उसने विश्वास का अमृत पीकर प्रणय की वेदी पर अपनी कोमल भावनाओं का उत्सर्ग कर अमर प्रेमफल की प्राप्ति की है। स्कंदगुप्त की देवसेना का हृदय सरलता, कोमलता कल्पना की रंगीनी, वेदना एवं आत्मोत्सर्ग से परिपूर्ण है। वह एक ऐसी नारी है जिसकी प्रेम साधना की परिणति अतृप्ति एवं अप्राप्य में होती है। उसके आराध्य देव तो उसे अवश्य मिले पर उसकी आशा भरी कल्पनाओं तथा सम्मोहनयुक्त संवेदनाओं पर तुषारपात हुआ फिर भी वह निराश नहीं होती है और कहती है- ''इस जीवन के देवता और उस जीवन के प्राप्य।''18

देवसेना का चरित्र प्रसाद के नाटको में वह उज्जवल रत्न है जिसकी प्रभा कभी मंद नहीं पड़ेगी। जग मंगलकारी कार्यों को त्यागकर एकांत में गार्हस्थ्य सुख की कामना करने वाला स्कंद देवसेना की ही प्रेरणा से साम्राज्य के उद्धार का संकल्प करता है। अतः बर्बर हूणों से भारतीय जनता की रक्षा करने वाले स्कंद को भीष्म के सदृश दृढ़ बनाने का श्रेय उस अबला को है। जिसने अपने तप से फल को भी आराध्यदेव के चरणों में अर्पित कर दिया। प्रसाद के चरित्रों में जहाँ सशक्त वीरोन्माद है। वहाँ वेदना-विह्ल उच्छ्वास भी है अभाव की बेचैनी भी हैं। प्रसाद की मधुर भावना एवं कल्पना नारी-चित्रण में अधिक रमी है। उनके अधिकांश नारी-पात्र जिन्हें उनकी पूर्ण सहानुभूति प्राप्त हुई है त्याग, सेवा, भावुकता, आस्था, आत्मसर्पण, आत्मबलिदान तथा आत्मभिमान की प्रतिमूर्तियाँ हैं। प्रसाद की नाटकीय नारियों का अनुशीलन करने पर यह बात स्पष्ट कही जाती है कि उन्होंने नारी की आदर्श कल्पना के अतिरिक्त उसकी आकर्षण और विकर्षण, रमणीय और भयावह कल्पना भी प्रस्तुत की है।

स्कंदगुप्त में देवसेना और विजया दो रूपगर्विता नारियों का चारित्रिक वैशिष्ट्य स्पष्ट रूप से दिखता है। एक के हृदय में पवित्र प्रेम निवास कर रहा है तो दूसरी के हृदय में वासनाजन्य तथा स्वार्थ का इतना ही क्या देवसेना में वह भाव भी दिखते हैं, जिनमें दूसरों के सुख के लिए अपने सुख के बलिदान का भाव निहित रहता है। यद्यपि उसके पवित्र मानवमंदिर में स्कंदगुप्त की ही मूर्ति प्रतिष्ठापित है। फिर भी विजया की स्वार्थपूर्ण आसक्ति को देखकर उसके प्रति मंगल कामना करती है। ''तुम भाग्यवती हो, देखो यदि वह स्वर्ग तुम्हारे हाथ लगे।''19

प्रसाद के नाटकों में नारी के कई रूप परिस्थिति एवं समयानुसार बदलते रहे हैं। प्रेम की जो स्थिति विजया में दिखती है वही देवसेना में भी प्रतीत होती है। परंतु प्रेम एकनिष्ठ होता है। इसलिए ''स्कन्दगुप्त का प्रथम आकर्षण विजया के प्रति होता है। किंतु देवसेना मन ही युवराज की मंजुल मूर्ति को हृदयासन पर प्रतिष्ठित कर अपनी प्रेम-वृत्ति पर अत्यंत कठोर नियंत्रण

रखती है। विजया से ही बात करने में उसके हृदय के भाव अप्रत्यक्ष रूप से सामने आ जाते हैं।"20

देवसना के मन में पलती भावना का आभास स्कन्दगुप्त को तब मिलता है, जब प्रतिहिंसा की ज्वाला से भरी विजया उसे धोखे से शमशान तक ले जाती है और मृत्यु को निकट जानकर भोलेपन से राजकुमारी देवसेना कह उठती है- "कापालिक । एक और भी आशा मेरे हृदय में हैं। वह पूर्ण नहीं हुई। मैं डरती नहीं हूँ केवल उसके पूर्ण होने की प्रतिक्षा है। विजया के स्थान को मैं कदापि न ग्रहण करूँगी । उसे भ्रम है, यदि वह छूट जाता- "किंतु मृत्यु के बदले उसे मिलता है। प्रियतम युवराज का स्नेहालिंग्न।"

देवसेना एक ऐसी नारी है जो संगीत सभा की अंतिम लहरदार और आश्रय-हीन तान, धूपदान की एक क्षीण गंध रेखा, कुचले हुए फूलों का म्लान सौरभ और उत्सव के पीछे का अवसाद सा नारी जीवन लेकर भी कृतार्थ है। क्योंकि उसके गीतों में किसी के प्रणय का स्वर्णिम आकर्षण है।

प्रसाद ने देवसेना के चरित्र मे प्रेम का भाव इस कदर भर दिया है कि वह प्रेममय ही प्रतीत होती है। उसका प्रेम विशुद्ध प्रेम है। उसमें विलास और प्रतिदान की कोई चाह नहीं, वह अपने हृदय में स्कंदगुप्त को छोड़कर किसी को भी स्थान नहीं देना चाहती।

वह कहती है-"इस हृदय में -आह कहना पड़ा। स्कंदगुप्त को छोड़कर न तो कोई दूसरा आया और न वह आयेगा।"21

हृदय की कोमल कल्पना को सुलाकर देवसेना कँटीली राहों से दूर जाना चाहती है। बेचारा स्कंदगुप्त जिसके मन की दुनिया के दीपक जलते-जलते बुझ जाते है। इसी द्वंद्व में खोया कह उठता है-"तुम चली जाओ ऐसा मैं किस मुँह से कहूँ और किस बज्र कठोर हृदय से तुरंत रोकूँ।"22

उत्सर्गमयी प्रेमिका देवसेना के अंतिम कथन में तो मानो प्रसाद जी का हृदय बोल उठा है-"कष्ट हृदय की कसौटी है, तपस्या अग्नि है। सम्राट यदि इतना भी न कर सके तो क्या? सब क्षणिक सुखों का अंत है।"23

अतएव देवसेना प्रसाद जी की अत्यंत मनोरम और अपूर्व सृष्टि है। हिंदी-नाट्य क्षेत्र में प्रसाद का प्रादुभाव एक नवीन धारा के साथ हुआ है। नवीन नाट्य शैली, नूतन संवाद चरित्र सृष्टि, सांस्कृतिक उत्थान की प्रखर भावना आदि उनकी स्वतंत्र विचारणा एवं चिंतना के परिचायक है। "प्रसाद गंभीर चिंतन एवं जीवन-द्रष्टा थे मूल रूप में वे कवि थे। भूत और वर्तमान की गतिशीलता को आत्मसात कर भविष्य के निर्माण के प्रति सतर्कता का भाव रखते हुए साहित्य-निर्माण में तल्लीन प्रसाद का व्यक्तित्व निरंतर नवीनता, स्वच्छता एवं मौलिकता का ही पाठ पढ़ाता हुआ दृष्टिगोचर होता है। उन्होंने अपने नाटकों के ऐतिहासिक परिवेश में मानव जीवन की विशद व्याख्या काव्यात्मक भाषा एवं गद्य-गीत शैली में प्रस्तुत की ही। उनकी इस जीवन- दृष्टि की सकते है।"24

प्रसाद ने मनोवैज्ञानिक आधार पर अंतर्द्वंद्वों को प्रकट कर, चरित्र-चित्रण में जो स्वाभाविकता और वैचित्र्य दिखलाया है वह उनकी सूक्ष्म दृष्टि का ही द्योतक है। "स्कंदगुप्त देवसेना और विजया की ओर आकृष्ट है तथा निर्णय करने में उसे द्वंद्वात्मक स्थिति का सामना करना पड़ता है। एसे मानवोचित अंत:वृत्तियोंयों को प्रकट कर प्रसाद जी ने अपनी अनोखे मनोवैज्ञानिक ज्ञान वृद्धि का ही परिचय दिया है। इसी प्रकार विजया

और देवसेना के चारित्रिक संघर्ष को भी कालात्मक तथा स्वाभाविक ढंग से उद्घाटित किया गया है।"25

प्रसाद के नाटको में नारी के प्रेयसी रूप के दर्शन भी तीन प्रमुख आधारों पर होते हैं। एक रूप वह है जहाँ प्रेम की विरल स्निग्धता है। दूसरे रूप में प्रणय भावना का मूल बलिदान हुआ है। तीसरे रूप में उन्माद की प्रबलता है।

'चंद्रगुप्त' की कार्नेलिया और 'अजातशत्रु' की बाजिरा दोनों ही प्रेम की विरल स्निग्धता का उदाहरण हैं। भारतीय गान और भारतीय दर्शन से प्रभावित ग्रीक राजकुमारी कार्नेलिया चन्द्रगुप्त के व्यक्तित्व, शौर्य एवं विनय से प्रथम दर्शन में ही प्रभावित हो जाती है। वह उस घटना को भूलना नहीं चाहती जब चन्द्रगुप्त ने फिलिप्स को नीचा, दिखाकर उसके सम्मान की रक्षा की थी।

चन्द्रगुप्त को प्यार करने के कारण ही वह भारत भूमि से भी जन्म-भूमि के समान स्नेह करती है। "मुझे इस देश से जन्म-भूमि के समान ही स्नेह होता जा रहा है। यहाँ के श्यामल कुंज, घने जंगल, सरिताओं की माला पहने हुए शैल श्रेणी, हरी भरी वर्षा, गर्मी की चाँदनी, शीतकाल की धूप, और भोले कृषक तथा सरल कृषक बालायें बाल्यकाल की सुनी हुई कहानियों की प्रतिमायें हैं। यह की सुनी हुई कहानियों की प्रतिमायें हैं। यह स्वप्नों का देश, यह त्याग और ज्ञान का पालना, यह प्रेम की रंगभूमि-भारत-भूमि क्या भुलाई जा सकती है, कदापि नहीं। अन्य देश मनुष्यों की जन्मभूमि है, यह भारत मानवता की जन्मभूमि है।"26

चन्द्रगुप्त स्वयं कार्नेलिया के देशभक्ति के हृदयोद्गार सुनकर आश्चर्यचकित हो जाता है और प्रभावित भी। "कार्नेलिया के हृदय का प्रणय पक्ष अत्यंत सात्विक है। उसमें न कहीं बरसाती नदी का वेग है और न तूफानी आवेग। उसकी प्रणय कथा शारदीय सरिता की भाँति प्रशांत एवं निर्मल गति से बहती चली जाती है।"27

सुबासिनी प्रेम को स्त्री जीवन का सत्य बताती है। तो कार्नेलिया प्रेम की भावनामयी धड़कनों की संवेदना को शब्दों का आवरण पहनाकर स्पष्ट करती है- "सखी। मदिरा की प्याली में तू स्वप्न सी लहरों को मत आंदोलित कर। स्मृति बड़ी निष्ठुर है यदि प्रेम ही जीवन का सत्य है तो संसार ज्वालामुखी है।"28

'चन्द्रगुप्त' नाटक की मालविका भी उस स्वच्छंद निर्झरणी के समान है जो सम-विषम मार्ग में कल-कल निनाद करती हुई अपने प्रियतम में अपने अस्तित्व को मिला देती है। मूक बलिदान देने वाली यह प्रेमिका उस कमनीय कलिका के समान है जो स्वछंद जीवन वृत्त पर खिलकर स्वयं विकर्ष हो जाती है। उसके जीवन में न कहीं जलन है और न द्वंद। करूणा और सेवा को अपना कर वह मित्र और शत्रु दोनों के प्रति समान भावनायें रखती है। यही कारण है कि उसका हृदय दिन-प्रतिदिन निर्मल और उदात्त होता जाता है, द्वेष और क्लेश स्वयं ही हार मानकर दूर हो जाते हैं। वही मानतत्व की और जीवन की चरम उपलब्धि है। उसका जीवन दर्शन कुछ-कुछ इस प्रकार का है- "फूल हँसते हुए आते हैं, फिर मकरंद गिराकर चले जाते हैं। एक स्निग्ध समीर का झोंका आता है, निःश्वास फेंक कर चला जाता है, क्या पृथ्वीतल रोने के ही लिए है? नहीं, सबके लिए एक ही नियम तो नहीं। कोई रोने के लिए है तो कोई हँसने के लिए।"29

वह शस्त्रों से डरती है, घृणा करती है, क्योंकि उसने आजीवन् सेवा का व्रत लिया है। अस्त्र आत्म रक्षा के लिए धारण किये जाते हैं किंतु वह प्राणों को धरोहर मानती है। प्रेम और सेवा की

मूर्ति यह बालिका सिंधु देश की रहने वाली है। उसकी मातृभूमि मनुष्य के प्राकृतिक जीवन का सुंदर पालना है। प्रकृति से भ्रमणशील होने के कारण भ्रमण करते-करते वह गांधार देश जा पहुँची। वहाँ तक्षिशिला में राजकुमारी अलका से स्नेह हो जाने के कारण वह वहीं रहने लगी। भवन आक्रमण के समय अलका ने उसे सिंहरण के साथ मालव भेज दिया और सिंहरण के पास से उसे चन्द्रगुप्त की ताम्बूलवाहिनी बनने का अवसर प्राप्त हुआ।

चन्द्रगुप्त को वह हृदय से प्रेम करती है। यहाँ तक की उसके लिए असत्य बोलना भी सौभाग्य मानती। "मालविका (स्वगत) क्या ? असत्य बोलना होगा। चन्द्रगुप्त के लिए तो सब कुछ करूँगी। (प्रकट)- अच्छा।"30 आदि से अंत तक यह प्रेम सेवा का रूप लिए रहता है। यहाँ तक कि अवसर आने पर वह चन्द्रगुप्त के लिए अपने प्राण तक न्यौछावर कर देती है। मालविका का ऐसा प्यार पाकर ही चन्द्रगुप्त उसको अपने प्यार और मित्रता की प्रतिकृति मानता है।

"प्रणय क्षितिज की नवसीमा की खोज में मालविका के आतुर प्राण उड़ जाते हैं। बलिदान की शया पर गाया गया मालविका का अंतिम गीत---।"31 हृदय में वेदना, कसक और मादकता को एक साथ उद्वेलित करता है। प्रेममय जीवन का सौंदर्य कर्त्तव्य की बलिवेदी पर स्वेच्छा से आत्मविसर्जन कर देता है।

चन्द्रगुप्त नाटक में अलका जैसी सामाजिक राष्ट्रीय भावनाओं से अनुरंजित नारी, जो नारी के ज्योतिपूर्ण शक्ति का प्रतिनिधित्व करती है, प्रसाद की कल्पना की ही सृष्टि हो सकती है, अन्य की नहीं। कल्याणी तथा मालविका जैसी प्रेममुग्धा, भावबहुला, आत्मत्यागिनी तथा सर्वस्व-त्यागिनी नारियाँ प्रसाद की लेखनी के ही प्रसूत हैं। मालविका अपने प्रिय की रक्षा के लिए तथा उसके जीवन को सुखी बनाने के लिए चन्द्रगुप्त को घटना से अज्ञात रखकर जीवनदान देती है और कहती भी है- "जाओ प्रियतम। सुखी जीवन बिताने के लिए और मैं रहती हूँ चिर दुःखी जीवन का अंत करने के लिए।"32 ऐसी नारियाँ जिन्होंने अपने प्राणप्रिय के लिए सर्वस्व देना ही सीखा है और प्रतिदान में केवल उनका कल्याण ही चाहा है यही प्रसाद जैसे समर्थ साहित्यकार की तूलिका-सृष्टि है।

प्रसाद के विचारों में विकास का क्रम दीख पड़ता है। प्राचीन परंपरा एवं संस्कृति के पक्षपाती प्रसाद का विचार समय की गति के साथ बदल जाता है। "ध्रुवस्वामिनी" का नारी- आदर्श उनके अन्य नाटकों की तुलना में भिन्न है। इस नाटक में नारी के समक्ष क्लीव, कायर और कापुरुष पति द्वारा शंकालु होकर शत्रु को अपनी पत्नी सौंप देने की भावना का विरोध है। यहाँ नारी पति के व्यवहारों से क्षुब्ध होकर केवल नियति को ही सब कुछ मानकर चलने की पक्षपातिनी नहीं है अपितु वह धर्म-व्यवस्था, सामाजिक संबंध, वैवाहिक नियमों की सीमा को तोड़कर अपनी साहसिकता का परिचय देते हुए आधुनिक नारी के समकक्ष आ बैठती हैं। वह विवाह की एकनिष्ठता से मोक्ष चाहती है और अंत में धार्मिक रूप से सफल होती है। प्राचीन परंपरा के अनुसार स्त्री का समर्पण पुरुष की दृष्टि में उसकी विवशता है। उसकी धार्मिक असहायता है। इसी कारण रामगुप्त के निर्णयों से स्त्री की नैतिक निष्ठा की अवहेलना दिखाई गई है। स्त्रियाँ पुरुषों के विनोद की साधन, संपत्ति हैं। वह उनकी ऐसी वस्तु है जिसे उपभोग के लिए किसी को भी दिया जा सकता है। उसका जीवन पुरुषों का कृतज्ञ और उपकृत होकर जीवन ढोने

के लिए ही रह जाता है। ऐसी मान्यता को देखकर प्रसाद का सुधारवादी विचार उससे समन्वय स्थापित नहीं कर पाता था। इसी से उन्होंने अनेक स्थलों पर इन प्राचीन परंपराओं के समकक्ष नई मान्यताओं को रखकर आदर्श की तुलना में यथार्थ का समर्थन करते हुए नारी की स्वतंत्र सत्ता का उद्घोष किया हैं।

ध्रुवस्वामिनी प्रतिकार करती हुई कहती हैं- “मैं उपहार में देने की वस्तु शीतल-मणि नहीं हूँ। मुझमें रक्त की तरल लालिमा है। मेरा हृदय उष्ण है- और उसमें आत्म-सम्मान की ज्योति है। उसकी रक्षा मैं ही करूँगी।”33

भारतीय संस्कृति में नारी के जीवन में पत्नीत्व की मर्यादा का समर्थन किया गया है। वह वास्तविक अर्थ में सुख-दुख की सहचरी है। उसकी एकनिष्ठता और आज्ञाकारिता अनुकरणीय है, परंतु इस निष्ठा का अर्थ नारी के व्यक्तित्व का पुरुष में संपूर्ण विलय नहीं है। उसका अपना स्वर इच्छा अस्तित्व बना रहना चाहिए। यदि पुरुष अपनी सीमाओं का उल्लंघन करता है तो नारी भी अनीति का विरोध करके अपने अस्तित्व को बनाये रख सकती हैं, प्रसाद जी के स्त्री पात्राओं में कर्त्तव्यनिष्ठा, सदाचार, सम्मान, आज्ञाकारिता आदि हैं, पर पति के दुराचरण सहने की शक्ति नहीं है। ऐसे अवसरों पर नैतिक शक्ति से अपने आराध्य पति का विरोध करके आचार की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते हुए स्वतंत्र अस्तित्व की स्थापना करना आधुनिक नारी का अधिकार है। वे ऐसी स्थिति में अहं का विलय नहीं करती हैं। रत्नाकर की गोपियों का भी यही भाव है-

“जैहैं बनि बिगरी कहा बारिधिता बारिधि की बूँदता बिलैहैं बूँद विवस विचारी की।”34

धर्म का उद्देश्य वैवाहिक जीवन में एक दूसरे के प्रति श्रद्धा और विश्वास रखकर जीवन यापन करने का है। इसमें व्यक्तिक्रम आने से संबंध-सूत्र में व्यवधान उत्पन्न होता है। विवाह में माता-पिता का प्रमाण रहने से केवल पारस्परिक द्वेष से संबध-विच्छेद नहीं हो सकता। गौरव से नष्ट, आचरण से पतित और कर्मों से राजकिल्विषी क्लीव पति का अपनी पत्नी पर कोई अधिकार नहीं रह जाता है। ”ध्रुवस्वामिनी“ के धरातल तक आते-आते प्रसाद की मान्यता में अंतर आ चुका था। यथार्थ जगत में नारी, पुरुष द्वारा सताई हुई होती है। देखने में आता है कि सिद्धान्त रूप में नारी की प्रशंसा करने वाला पुरुष अपने व्यवहार और अभिव्यक्ति में भेद रखता है। धुरवस्वामिनी ऐसे ही पुरुषों की वास्तविकता प्रस्तुत करती हुई अपने व्यक्तित्व की स्थापना करती है। वह पुरुषों की भाँति ससम्मान जीने का अधिकार चाहती है। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति अपनी स्वतंत्र सŸाा के साथ सह-अस्तित्व का पालन करता हुआ व्यक्तिवाद की प्रतिष्ठा करता है।

डॉ.रामलाल सिंह के शब्दों में कह सकते हैं- “वे सामाजिक विचार, वे प्रथायें तथा रीति-रिवाज एवं मान्यतायें जिनका समय बीत चुका है जो समाज की प्रगति में बाधा डालती हैं, उन्हें प्रसाद जी स्वीकार नहीं करते तथा वे अग्रगामी विचार, वे रीतियाँ वे प्रथायें तथा वे मान्यताएं जो जीवन के लिए प्रयोग सिद्ध हो चुकी हैं, उन्हें ग्रहण करने में वे संकोच नहीं करते।”35

प्रसाद के नारी आदर्श में पत्नीत्व की मर्यादा की एकनिष्ठता का पूर्ण समर्थन किया गया है, निष्ठा से ही कर्त्तव्य-निर्वाह की भावना का उदय होता है, ध्रुवस्वामिनी अपनी वेदनाओं को अपने हृदय में छिपाकर भी इस निष्ठा का परिचय देती हैं।

वह सहनशील बनकर अपनी रक्षा के लिए अपने पति राजा से निवेदन करती है- "राजा आज मैं शरण की प्रार्थिनी हूँ मैं स्वीकार करती हूँ कि आज तक मैं तुम्हारे विलास की सहचरी नहीं हुई। किंतु वह मेरा अहंकार चूर्ण हो गया। मैं तुम्हारी होकर रहूँगी।"36 स्पष्ट है कि इन शब्दों में समर्पण का अगाध गांभीर्य है।

नारी के समर्पण में प्रसाद ने पुरुष को महत्व दिया है। काम को नहीं। सहनशीलता और एकनिष्ठता रहते हुए भी पुरुष के अत्याचारों का विरोध बताया गया है। आरंभ में कोमा शकराज के पौरूष से ही आकृष्ट हुई थी, पर उसके स्वार्थ मलिन कलुषित रूप को देखकर अपने प्रेम तक को छोड़ देने के लिए तत्पर हो जाती है। उसका विश्वास है कि प्रेम एक पीड़ा है उसे छोड़ देने पर उसकी कसक भी धीरे-धीरे दूर हो जायेगी। वह शकराज के स्वावलम्बी पुरुष मूर्ति पर ही मुग्ध हुई थी। अन्य व्यक्तित्व पर नहीं। इसी प्रकार ध्रुवस्वामिनी एक बार राक्षस-विधी से ही सही रामगुप्त के साथ विवाह बंधन में बाँध दिये जाने पर यथा संभव, पूर्ण प्रणय को विस्मृत कर, रामगुप्त के प्रति निष्ठा व्यक्त करने की ओर अग्रसर होती है। परंतु उसकी कायरता से क्षुब्ध हो अपने सम्मान की रक्षा में तत्पर हो जाती है।

प्रसाद का मत है कि नारी के सम्मान आत्म-गौरव की रक्षा हर प्रकार से होनी चाहिए। यदि पति इसमें असमर्थ हो तो पत्नी द्वारा पति की रक्षा सर्वोपरि ध्येय है। उसके लिए लौकिक बंधनों तक की अवहेलना कर दी गई है। धुरवस्वामिनी किसी को भी अपनी रक्षा करते न देखकर स्वयं उस कार्य में प्रवृत्त होती है। उसमें रक्त की तरल लालिमा हैं। आत्म-सम्मान की ज्योति है। अतः वह निर्लज्ज, मद्यप और क्लीव पति की भर्त्सना करती हुई उसे अनार्य और निष्ठुर कहती है। वह राक्षस विवाह को भी अपनी उदारता और त्याग-वृत्ति से निबाहना चाहती है, पर विवश होकर ही नारी स्वतंत्रता पर अपना अटल विश्वास प्रकट करती है इसी के समर्थन में मंदाकिनी भी धर्म को चुनौती दे देती है। इस प्रकार प्रसाद जी ने नारी के नैतिक आदर्श के सभी सद्गुणों-दया, त्याग क्षमा, सहनशीलता, एकनिष्ठता, विश्वास, शरणागति आदि को मानकर भी उनका आचरण परिस्थितियों के अनुसार करने का ही विश्वास प्रकट किया है। 'स्वत्व' रक्षा का प्रश्न उपस्थिति होते ही इन सबको छोड़ देना श्रेयस्कर माना गया है। नारी की आज्ञाकारिता की परीक्षा उसे समाप्त करके नहीं ली जा सकती है। उनका मत है कि नारी से नैतिकता की आशा करने वाला पुरुष भी नीति एवं धर्म का पालक होना चाहिए। यदि पुरुष ऐसा नहीं करता तो नारी भी 'सत्व' एवं सम्मान रक्षा के लिए पुरुष का विरोध करने का पूर्ण अधिकार रखती है।

'ध्रुवस्वामिनी' नाटक में परित्यक्ता धुरवस्वामिनी और प्रणय-वंचिता कोमा द्वारा प्रसाद ने एक ओर नारी की सामाजिक स्थिति का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है और दूसरी और पुरुष के समान ही स्वतंत्रता दिलाकर उसके नैतिक बल द्वारा परंपरागत ही भावना को हटाने का प्रयास किया है। सामाजिक क्षेत्र में नारी को मात्र भावुकता पूर्ण न मानकर उसकी बौद्धिक चेतना को जगाने की चेष्टा की गई है। नारी कोमा की दार्शनिक उक्तियों में अध्ययन का ठोस आधार है। उसके अकाट्य सिद्धांतों के समक्ष पुरुष का दंभ भी समाप्त होने लगता है। यह बात दूसरी है कि पुरुष का अहं उसे मान्यता देने को प्रस्तुत न हो, पर हृदय से उसके विचारों का वह कायल हो जाता है। अतः दार्शनिक क्षेत्र में नारी की श्रेष्ठता का प्रतिपादन प्रसाद की नवीन भावना है। इस

शब्द–ब्रह्म
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2320 – 0871
17 सितंबर 2015
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

नाटक में कोमा की दार्शनिक उक्तियाँ शकराज को निरूतर कर देती है। यहीं पर पाठकों के मन में नारी कोमा के प्रति सहानुभूति के साथ ही असीम सम्मान और श्रद्धा का भाव उत्पन्न हो जाता है अतः 'ध्रुवस्वामिनी' में नारी का आदर्श परंपरागत शोषण प्रवृत्तियों में न बँधकर देशकाल के अनुसार परिवर्तित होता हुआ नारी के समान अधिकार, समान बुद्धि और सह अस्तित्व पूर्ण जीवन की घोषणा करता है।

"प्रसाद ने धुरवस्वामिनी का चरित्र अंकित करते हुए कुशलता का परिचय दिया है। उसका गत्यात्मक और परिवर्तनशील चरित्र परिस्थितियों की देन है। नाटक में आद्यन्त व्यापक रहने वाले इस चरित्र में बौद्धिकता देखने का प्रयास किया गया है।"37

'धुरवस्वामिनी' में अन्य नाटकों की भाँति नियति पर अटूट विश्वास है। पर परिस्थिति चक्र में पड़कर यह विश्वास हिल जाता है। ध्रुवस्वामिनी रामगुप्त के संग बँधकर एक बार नियति को स्वीकार कर लेती है। वह करूणा की प्रतिमूर्ति बनकर पत्नीत्व धर्म के निर्वाह की चेष्टा करती है, परंतु अधिक शोषित किए जाने पर उसका रौद्र-कर्म प्रधान रूप प्रकट हो जाता है। वह नियति को अस्वीकार करके अपने तेज से रामगुप्त को अभिभूत कर लेती है और अपने कर्म द्वारा अपने भाग्य को भी अपने अनुकूल बना लेने की क्षमता अपने में उत्पन्न कर लेती है। अतः इनकी नारी पात्राएं केवल भाग्य के नाम पर आँसू बहाना नहीं जानती अपितु भाग्य को भी मोड़कर उसे कर्म के अधीन बना देती हैं।

प्रसाद की दृष्टि में नारी का यह स्वभाव है कि उपेक्षा किये जाने पर भी अपने प्रेमी को भूल नहीं पाती, उससे निरादृत होकर भी उसके लिए अपना जीवन घुला सकती है, यहाँ तक कि अपने प्राणों तक का उत्सर्ग कर देती है। कोमा यही करती है। शकराज द्वारा उसके एकनिष्ठ प्रेरम की उपेक्षा किये जाने पर उसकी मृत्यु के उपरांत उसके शव को प्राप्त करती है, वह मधुर, कोमल और वंचिता होकर भी प्रेम के नाम पर अपने जीवन को न्यौछावर कर देती है। वह पुरुष-प्रेम के बिना रहने में असमर्थ है।

अतः प्रसाद के नारी आदर्श से स्त्री के जीवन में प्रेम का सर्वोपरि महत्व है, इस प्रेम में उपेक्षिता बनकर भी वह अपने प्रेमी के लिए सब कुछ दे सकती है। निस्वार्थ त्याग का यह भाव प्रशंसनीय है। अतः प्रसाद का नारी आदर्श उच्च कोटि का है। प्रसाद एक ऐसे ही समर्थ साहित्यकार थे जिन्होंने युग-प्रवर्तन का कार्य किया, उन्होंने साहित्य के क्षेत्र में प्रधानतः और जन जीवन में सामान्यतः युग को प्रेरित किया। नारी विकास की समस्या उनके काव्य का प्रमुख स्वर रहा। डॉ.यज्ञदत्त शर्मा के शब्दों में- "उन्होंने अपने साहित्य में तत्कालीन समाज का चित्रण किया है। नारी-समस्या उनके काव्य का प्रमुख स्वर रहा। उसका प्रमुख रूप प्रेम के साथ अभिव्यक्त हुआ। जिसने पाठकों पर सम्मोहन मंत्र का काम किया।"38

फिर भी इसमें संदेह नहीं कि प्रसाद ने "ध्रुवस्वामिनी" में नारी के जीवन से संबद्ध कुछ ज्वलंत समस्याएँ उठाई हैं। नाटक में कुछ प्रश्न स्वतः ही उभरकर आते हैं- क्या वह क्लीव और अत्याचारी पति की अनुगता होने को बाध्य है ? क्या उसे ऐसे पति से संबंध विच्छेद करने का अधिकार है जो उसके कुल-शील और नारीत्व की मर्यादा की रक्षा नहीं कर पाता ? क्या नारी को प्रेम का अधिकार नहीं ? और इन प्रश्नों के उत्तर में कुछ प्रतिक्रियाएँ भी स्वतः सामने आती हैं- "पुरुषों ने स्त्रियों को अपनी पशु-सम्पत्ति

समझकर उन पर अत्याचार करने का अभ्यास बना लिया है। पुरुष के लिए नारी सब-कुछ बलिदान कर देती है, लेकिन उसके बलिदान का कोई मूल्य नहीं। अपने दुर्बल और अवलंब खोजने वाले हाथों से यह पुरुष के चरणों को पकड़ती है, और वह सदैव ही इसको तिरस्कार घृणा और दुर्दशा की भिक्षा से उपकृत करता है।''39

स्त्री और पुरुष का परस्पर विश्वासपूर्वक अधिकार-रक्षा और सहयोग ही तो विवाह कहा जाता है। यदि ऐसा न हो तो धर्म और विवाह खेल है आदि। वस्तुतः नारी की समस्या ही नाटक की केंद्रीय समस्या है। स्त्री-पात्रों के चित्रण में प्रसाद ने एक भिन्न दृष्टि से काम लिया है। उन्होंने भारतीय चिंतन और स्वानुभव के आधार पर नारी को पराशक्ति, प्रकृति और माया के रूप में स्वीकार किया है। मल्लिका, मालविका, देवसेना, वाजिरा, वासवी आदि के रूप में उन्होंने उस नारी की कल्पना की है जो पुरुष के हृदय पर शासन करती है और उसका पथ प्रशस्त कर उसे भ्रष्ट होने से बचाती है। सबसे अधिक महत्व प्रसाद के नाटकों में इसी नारी को मिला है। वासवी, पद्मावती, मनसा, मंदाकिनी, कमला, देवकी, कार्नेलिया, रामा, वाजिरा आदि नारी पात्रों के औदात्य की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। वे न जीवन के भँवर में पड़ी मध्यवर्गीय दुर्बल नारियाँ हैं और न ''नाटक के जीवन में करूण गंध छोड़ जाने वाली फूल-सी कुमारियाँ, हृदय पर शासन करने वाली, पाशव वृत्ति वाले क्रूरकर्मा पुरुषों को कोमलता और करूणा की शिक्षा देने वाली यह वास्तविक नारी प्रसाद की अवधारणा में एक स्वतंत्र अस्तित्व रखती हैं। उसी का महत्व प्रतिपादित करने के लिए उन्होंने पुरुषार्थ का ढोंग कर बवंडर बनकर जीने वाली, क्रूरता को थपकी देकर जगाने वाली अहंवादी नारी का (वैषम्य की दृष्टि से) चित्रण किया है जो समस्त सदाचारों के विप्लव का कारण बनती है। छलना, शक्तिमती, अनंतदेवी, सरमा आदि इसी वर्ग के नारी-पात्र हैं जिन्हें राजनीति की आग से खेलने वाली राजमहिषियों के वर्ग में लिया जा सकता है। इससे एक भिन्न वर्ग उन विलासी स्त्रियों का है जो 'मायाविनी' हैं और पुरुष उनके हाथ का खिलौना है। भरा हुआ यौवन और प्रेमी हृदय के समस्त उपकरणों को लेकर मादक सुख, घोर आनंद और विराट विनोद की मरीचिका में भटकती हुई वे पुरुष को अपने मुखचंद्र की अतींद्रिय कामना में डुबाकर उसे अपनी तरूण आकांक्षाओं का साधन बना डालती हैं। जो ऐसा नहीं बन पाता उस पर वे आश्चर्य करती हैं-''जिसे आत्मसंयम की इतनी शिक्षा मिलनी थी, उसे हाड़-मांस का शरीर क्यों मिला- यह सोचती हुई वे फिर किसी और 'फूल' को स्वायŸा करने के लिए उसे छोड़ देती हैं। दामिनी, मागंधी और विजया इसी वर्ग की नारियाँ हैं।''40

कुल मिलाकर प्रसाद ने नारी को प्राचीन भारतीय आदर्शों, छायावादी भावनाओं और रोमानी कल्पनाओं में बाँधकर एक ऐसा रूपाकार प्रदान किया है कि नारी उनके नाटकों में अर्ध सत्यों को लेकर ही अवतरित हुई लगती है। प्रसाद की नारी अन्य के लिए समर्पण, सेवा और त्याग का जो जीवन जीती है वह पुरुष की दृष्टि से मोहक भले ही लगे, किंतु श्रद्धा और इड़ा के दो धुरवांतों के बीच नारी की कल्पना यदि उन्होंने सामाजिक संदर्भों में की होती तो प्रसाद की नारी आदर्श का झूठा भ्रम न पैदा करती। वस्तुतः प्रसाद के नाटकों में सबसे महत्वपूर्ण नारी वह है जो आनादर्श अज्ञान और अहं के कारण जीवन और जगत् में विपरीत गति से चलती है। वह नारी जीवन के सत्यों के अधिक निकट और जीवंत है।

"युगों से नारी पुरुष की श्रृंखला में बद्ध तड़पती हुई अपनी भावनाओं का बलिदान करती हुई चित्रित की गई थी। प्रसाद का स्वच्छंदतावादी हृदय पश्चिम के प्रभाव में आकर नारी के करूण दशा का विद्रोह कर बैठा। ध्रुवस्वामिनी में मोक्ष की प्रथा का उच्च स्वर नारी स्वतंत्रता के प्रथम अधिकार पत्र के रूप में जाता है।"41

नारी जीवन का आदर्श एवं पुरुष की सद्‌वृत्तियों का केंद्र गृहस्थ जीवन में देखा जा सकता है। प्रसाद अपने 'एक घूँट' में वैवाहिक जीवन एवं दांपत्य जीवन में प्रेम की स्थिति का वर्णन करते हुए कहते हैं कि अनियंत्रित प्रेम, संघर्ष का कारण होता है। विवाह बंधन को तोड़कर मानवता के नाम पर प्रेम का स्वच्छंद व्यापार एक दंभ है। जो समाज में अशांति और अनाचार की वृद्धि करता है। प्रसाद जी ने बनलता के माध्यम से अपने विचारो को उपस्थित किया है। बनलता में प्रेम है, ओज और उत्साह है, और आनंद सरीखे पथ भ्रष्ट युवकों को ठीक मार्ग पर ले जाने की क्षमता भी है। 'एक घूँट' का आदर्श यह भी है कि कोई भी व्यक्ति अपनी गृहस्थी को छोड़कर सुखी नहीं रह सकता। जहाँ दांपत्य जीवन का आधार नारी चरित्र की विशालता पर निर्भर करता है। बस सभी लोगों को गृहस्थ जीवन की प्रेम की एक घूँट चाहिए, फिर जीवन का संतुलन ठीक बैठेगा, यही प्रसाद का संदेश 'एक घूँट' द्‌वारा दिया गया है। "एक घूँट मुक्त भोग के लिए है, जो स्वच्छंद तथा अनियंत्रित प्रेम का प्रतीक है जिसमें मृगतृष्णा और दुख है, सच्चा आनन्द वैवाहिक आनंद है। यही इस नाट्‌य रूपक का मूल विषय है।"42

निष्कर्ष

प्रसाद के नाटकों का केवल ऐतिहासिक महत्व ही नहीं है, अपितु कला की दृष्टि से भी उनका स्थान बहुत ऊँचा है। इन नाटकों की सफलता इस बात से भी है कि उनमें ऐसे सौंदर्यशील गरिमायुक्त नारी पात्रों की अवतारणा हुई है, जो हमारे लिए चिरस्मरणीय हो गए हैं। देवसेना, अलका और ध्रुवस्वामिनी को कौन भूल सकता है। इसी भांति प्रसाद के नाटकों में अनेक ऐसे स्थलों और परिस्थितियों की सर्जना हुई है जो भावोन्वेष की दृष्टि से अनुपम हैं। मार्मिक स्थलों के कारण प्रसाद की नाट्‌य-कृतियों की लोकप्रियता सदैव अक्षुण्ण बनी रहेगी।

संदर्भ ग्रन्थ

1.ऋग्वेद; 4/57/6-7
2.प्रसाद ग्रंथावली खण्ड- 1; पृ0 776
3.अजातशत्रु; पृ. 214
4.वही; पृ. 221
5.वही; 1/5, 6.वही; पृ. 272, 7.वही; पृ. 272-273
8.वही; पृ. 281, 9.वही; जनमेजय का नागयज्ञ पृ. 321, 10.वही; पृ. 3/2
11.प्रसाद के नाटकः स्वरूप और संरचना; पृ. 85
12.प्रसाद ग्रंथावली भाग-1; पृ. 127
13.प्रसाद के नाटक; पृ. 120
14.स्वच्छंदतावादी नाटककार जयशंकर प्रसाद; पृ. 98-99,
15.अजातशत्रु; पृ. 107-108
16.स्कंदगुप्त; पृ. 137, 17.वही; पृ. 138
18.प्रसाद ग्रंथावली भाग-1; पृ. 558
19.वही; पृ. 488
20.वही; पृ. 46
21.वही; पृ. 135
22.वही; पृ. 148
23.वही; पृ. 149
24.भारतीय नाट्‌य साहित्य; पृ. 303
25.स्वच्छंदतावादी नाटककार जयशंकर प्रसाद; पृ. 83-84
26.चन्द्रगुप्त; पृ. 126 , 27.वही; पृ. 180-181
28.वही; पृ. 181, 29.वही; पृ. 101, 30.वही; पृ. 136
31.वही; पृ. 162-163
32.प्रसाद ग्रंथावली भाग-1; पृ.-714

33.प्रसाद ग्रंथावली खण्ड -1; पृ. 757
34.उद्धव शतक, पृ. 51
35.कामायनी अनुशीलन; पृ. 188
36.प्रसाद ग्रंथावली भाग-1; पृ. 747
37.प्रसाद के नाटको का शास्त्रीय अध्ययन; पृ. 198
38.प्रसाद साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि; पृ. 20
39.प्रसाद ग्रंथावली खण्ड 1; पृ. 776
40.प्रसाद के नाटकः स्वरूप और संरचना; पृ. 225
41.हिन्दी नाटको पर पाश्चात्य; पृ. 140
42.हिन्दी नाटको पर पाश्चात्य प्रभाव; पृ. 381

सहायक ग्रंथ

1.अग्रवाल; डॉ.पुरूषोत्तम दास, धुरवस्वामिनी का शास्त्रीय विवेचन, जीवन ज्योति प्रकाशन, 3014, बल्ली मारान, दिल्ली-6, संस्करण, 1974

2.कृष्णन; डॉ.सर्वेपल्लि राधा, धर्म और समाज, राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली

3.गर्ग; प्रतिभा- छायावादी कवियों की नारी भावना; प्रकाशक-जवाहर पुस्तकालय, सदर बाजार मथुरा, 1987

4.गुप्त; मैथिलीशरण- साकेत, संस्करण, 1956, प्रसाद प्रकाशन गोवर्द्धन सराय, वाराणसी

5.चतुर्वेदी; जगदीश्वर, सुधा सिंह, स्त्री अस्मिता साहित्य और विचारधारा, आनन्द प्रकाशन, कोलकाता प्रथम संस्करण 2004

6.चतुर्वेदी; डॉ.शंभूनाथ, आधुनिक कविता की यात्रा, सुलभ प्रकाशन, 17 अशोक मार्ग, लखनऊ, 1983

7.चातक; डॉ.गोविन्द, प्रसाद के नाटक: स्वरूप और संरचना, तक्षशिला प्रकाशन, 23/4762, अन्सारी रोड, दरियागंज

8.तनेजा; डॉ. सत्येन्द्र, हिंदी नाटक पुनर्मूल्यांकन, ग्रन्थम प्रकाशक, रामबाग, कानपुर-12

9.तिवारी; डॉ.रामचन्द, हिंदी का गद्य-साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, के 40/6 भैरवनाथ, वाराणसी-1

10. दुआ; श्रीमती सरला-आधुनिक हिंदी साहित्य में नारी, साहित्य निकेतन कानपुर

11.दुधनीकर; डॉ. एम.एस., प्रसाद साहित्य का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन, अलका प्रकाशन, किदर्व नगर, कानपुर, 205011

12.दीक्षित; डॉ. सूर्यप्रसाद, प्रसाद साहित्य की अंतः चेतना, कलमघर प्रकाशन, जोधपुर, प्रथम संस्करण, 1973

13.पाठक; डॉ. मानवेन्द्र, प्रसाद-काव्य में ध्वनि तत्व, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1990

14.पाण्डेय; गंगा प्रसाद, छायावाद के आधार स्तम्भ, लिपि प्रकाशन, ई 5/20 कृष्णानगर, दिल्ली-51, प्रथम संस्करण, 1971

15.प्रसाद; रत्नशंकर, डॉ. गिरीश चन्द्र त्रिपाठी, प्रसाद के नाम पत्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1976

16.मदान; इन्द्रनाथ, जयशंकर प्रसाद, चिंतन व कला, हिंदी भवन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1956

17.मल्होत्रा; डॉ. सुषमा पाल, प्रसाद के नाटक तथा रंगमंच, राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीरी गेट, दिल्ली

18.मालती; डॉ. के.एम., स्त्री विमर्श: भारतीय परिप्रेक्ष्य, वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली-2

19.मिश्र; डॉ. सत्यप्रकाश, जयशंकर प्रसाद ग्रंथावली, भाग-1, लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-1, सं0 2010

20.वही; भाग-2, वही, 21.वही; भाग-3, वही

22.वही; भाग-4, वही

23.सक्सेना; डॉ. द्वारिका प्रसाद, आँसू-भाष्य, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, प्रथम संस्करण, 1971

24.वही; प्रसाद-दर्शन, विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा, प्रथम संस्करण 1969

25.सक्सेना; डॉ. सुनीता, महिला उपन्यासकारों की सामाजिक चेतना, आशा पब्लिशिंग कम्पनी, आगरा-282004, प्रथम संस्करण 2004

26.सिंह; डॉ. दशरथ, स्वचछंदतावादी नाटककार जयशंकर प्रसाद, सन्मार्ग प्रकाशन, जवाहर नगर, दिल्ली

27.सिंह; नामवर, छायावाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1955

28.शतपथी; डॉ. अर्जुन, मधुसूदन साहा, जयशंकर प्रसाद परिप्रेक्ष्य एवं परिदृश्य, पराग प्रकाशन, 3/114, कर्ण गली, विश्वासनगर, शाहदरा, दिल्ली-32, प्रथम संस्करण 1989

29.शर्मा; डॉ. श्रीपति, हिन्दी नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव, विनोद पुस्तक मन्दिर, हास्पिटल रोड, आगरा

30.शाह; रमेश चन्द्र- छायावाद की प्रासंगिकता, प्रथम संस्करण, 1973 राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली

31.शुक्ल; आ. रामचन्द्र-हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

32.श्रोत्रिय; प्रभाकर, जयशंकर प्रसाद की प्रासंगिकता, भारतीय ज्ञानपीठ, लोदी रोड, नयी दिल्ली-3, द्वितीय संस्करण 2004